...ष्णु-ग्रन्थमाला, वृन्दावन

श्रीविष्णु-ग्रन्थमाला का दशवाँ-पुष्प

श्रीकपिल मुनि

लेखक

प्रोफेसर श्रीविश्वेश्वर दर्शनाचार्य

सम्पादक

इन्द्र ब्रह्मचारी

प्रकाशक:—

स्वामी श्रीनारायणदास [रिटायर्ड तहसीलदार]

श्रीविष्णु-ग्रन्थमाला, श्रीवृन्दावन

मूल्य =)॥

श्रावण. ९५ वि०

मुद्रक

बा० प्रभुदयाल मीतल,

अग्रवाल प्रेस, श्रीवृन्दावन

निवेदन

प्रोफेसर श्रीविश्वेश्वरजी ने "श्रीकपिल-चरित-चर्चा" नाम का एक निबन्ध कई साल पहिले लिखा था, वह लेख श्रेय के श्रीमद्भागवताङ्क में प्रकाशित भी हुआ था, उस लेख से कुछ आवश्यक-अंश को लेकर और श्रीभागवत से कुछ आवश्यक प्रसङ्ग से लेकर यह छोटी-सी पुस्तक तैयार हुई है।

भगवान् श्रीकपिल-मुनि ने श्रीमद्भागवत में जितनी उत्तमता से प्रकृति-पुरुष का विवेचन किया है, उससे भी कहीं अधिक भक्ति एवं वर्ण-आश्रम-सम्बन्धी धर्मों का विवेचन किया है। इस छोटी-सी पुस्तिका में सभी ज्ञातव्य बातें आ गई हैं। आशा है, प्रेमी-पाठकों के परमार्थ-चिन्तन में यह पुस्तक सहायक होगी।

हम शीघ्र ही "श्रीआचार्य-चरितावली" प्रकाशित करना चाहते हैं। आशा है कृपालु प्रेमी-पाठक हमारी सेवाओं को स्वीकार करते रहेंगे।

श्रावणी, ६५
श्रीवृन्दावन } श्रीनारायणदास

श्रीकपिल मुनि

[कर्दम और देवहूति]

सरस्वती के पवित्र तट पर, निर्जन एकान्त-शान्त में श्रीकर्दम मुनि का प्रशान्त तपोवन था। मधुर और सुस्वादु फूलों के हरे-भरे, फूले-फले वृक्षों के ऊपर चढ़ी हुई सुगन्धित वल्लरियों ने स्थान-स्थान पर सुषमामयी कुञ्जों की रचना कर रक्खी थी। प्रातःकाल के सुहावने समय में सलोनी लतिकाओं की नव-विकसित प्रसून-मञ्जरी की भीनी गन्ध के साथ मिली हुई यज्ञ-सुवास से सारा तपोवन महक उठता था।

तपोवन के बीच में एक छोटी-सी सुन्दर कुटी बनी हुई थी। उसके चारों ओर रङ्ग-बिरङ्गे सुगन्धित
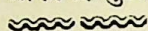
फूलों के छोटे-छोटे पौदों से भरी हुई क्यारियाँ बनी हुई थीं। इसी कुटिया के भीतर तपोवन के प्राणभूत कर्दम मुनि रहते थे। कर्दम मुनि ने कब से इस एकान्त तपोवन को जीवन प्रदान किया था, इसे कोई नहीं जानता। आश्रम को देखने वाले बड़े-बूढ़े भी यही कहते थे कि, हमारे बचपन में भी यह आश्रम ऐसा ही बना हुआ था और मालूम नहीं, कब से यही मुनि उसमें वास कर रहे हैं। लोगों का अनुमान था कि महर्षि कर्दम सैकड़ों वर्षों से यहीं रह कर तपस्या कर रहे हैं।

यों तो तपस्वी-जीवन ब्राह्मण का आदर्श ही है, परन्तु कर्दम मुनि के ऊपर ब्रह्माजी ने एक बड़े कार्य का उत्तरदायित्व सौंप दिया था और इस एकान्त तपोवन में भीषण तपस्या के द्वारा उस कार्य को सफलतापूर्वक सम्पादन करने के लिये वह शक्ति-सञ्चय कर रहे थे।

उन दिनों सृष्टि का प्रारम्भिक युग था और मनु-वंश की वृद्धि का प्रश्न ब्रह्मा के सामने उपस्थित था।

कर्दम और देवहूति

सन्तानोत्पत्ति के द्वारा मनुष्यों की संख्या-वृद्धि निमित्त ब्रह्मा ने कर्दम मुनि को ही चुना और उसके लिए आवश्यक शक्ति-सञ्चय करने का आदेश देकर ही उन्हें यहाँ भेजा था। कर्दम मुनि अपेक्षित समय तक इस एकान्त तपोवन में ब्रह्मचर्य और तपस्यापूर्वक संयत-जीवन व्यतीत करते हुए अपरिमित शक्ति-संचय का प्रयास ही कर रहे थे

इस प्रकार तपस्या के द्वारा शक्ति-सञ्चय करके कर्दम मुनि जब उस उत्तरदायित्व को निबाहने के योग्य हो गए, तो ब्रह्माजी को उनके लिए वैसे ही सशक्त और उपयोगी सहयोगी को ढूँढ़ने की चिन्ता हुई, तो इधर आदिराज मनु के परिवार पर उनकी दृष्टि पड़ी। उन दिनों मनु-परिवार संख्या की दृष्टि से बहुत छोटा था। घर में महारानी शतरूपा के अतिरिक्त प्रियव्रत और उत्तानपाद दो लड़के और देवहूति नाम की सुन्दर कन्या थी। देवहूति का सौन्दर्य तो वैसे ही देव-कन्याओं को लजाने वाला था, फिर नव-यौवन के विकास ने उसके अङ्ग-अङ्ग में लावण्य की मादक
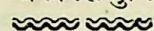
मदिरा भर दी थी। उसकी मनोरम मुस्कान में, उसके मन्द पद-विन्यास में यौवन को उन्मादी बना डालने के लिये अपरिमित रस भरा हुआ था। ब्रह्माजी की दृष्टि उस पर पड़ी, तो एक ही बार में उन्होंने देवहूति को कर्दम मुनि के लिए उपयुक्त वधू के रूप में वरण कर लिया और महर्षि नारद के द्वारा अपना सन्देश कन्या के पिता आदिराज मनु के पास कहला कर भेजा। इधर मनुजी तो स्वयं ही देवहूति के लिए योग्य वर के अन्वेषण की चिन्ता कर रहे थे। जब यह सन्देश उनके पास पहुँचा, तो उन्हें हार्दिक प्रसन्नता हुई और ब्रह्माजी के आदेशानुसार देवहूति का विवाह कर्दम मुनि के साथ कर देने की सहमति प्रकट कर, उसके लिए तिथि भी निश्चित कर, ब्रह्माजी के पास उत्तर भेज दिया।

तिथि निश्चित हो जाने के बाद ब्रह्माजी कर्दम मुनि के आश्रम में आए और उनसे बोले कि आपके योग्य कन्या का अन्वेषण और आपके विवाह का प्रबन्ध हमने कर दिया है। परसों कन्या के पिता आदिराज मनु

तथा महारानी शतरूपा अपनी कन्या देवहूति के साथ आपकी सेवा में उपस्थित होंगे और आपसे उस वधू-रूप में स्वीकार करने की प्रार्थना करेंगे । यह निश्चय रखिए कि कन्या-रूप-यौवन-सम्पन्ना और आपके सर्वथा अनुरूप है । उसके साथ रह कर अपनी तपस्या के ध्येय-मनुवंश की वृद्धि करते हुए आप सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकेंगे ।

देवहूति और कर्दम मुनि की इस अनुपम जोड़ी को मिला कर ब्रह्माजी एक भारी चिन्ता से मुक्त हो गए। उन्हें आशा थी कि इस दम्पति से मनु-वंश की वृद्धि हो सकेगी और उसमें बड़ी-बड़ी महान् आत्माएँ जन्म ग्रहण करेंगी । यही सोच कर स्वयं ब्रह्माजी ने भी एक बार देवहूति के गर्भ में जाने का सङ्कल्प कर लिया था । उस दिन कर्दम मुनि के आश्रम में जाकर न केवल देवहूति के आगमन का ही शुभ-सन्देश उन्होंने कर्दम मुनि के पास पहुँचाया था, अपितु उसके साथ ही कर्दम मुनि की होनहार सन्तति के सम्बन्ध में भविष्य-वाणी भी कर दी थी, संसार को ज्ञानालोक

प्रदान करने के निमित्त देवहूति के गर्भ से स्वयं आने का अपना संकल्प भी अप्रकट कर दिया था। इस भविष्यवाणी के अनुसार कर्दम मुनि के नौ सन्तानों का निर्धारण किया गया।

इस प्रकार मनु–वंश की वृद्धि के विषय में सम्पूर्ण व्यवस्था करके ब्रह्माजी तो स्वस्थ चित्त होकर अपने स्थान को चले गए परन्तु उनकी आज की बातों ने कर्दम मुनि के हृदय में गुदगुदी पैदा कर दी थी। देवहूति के नाम से उन्हें कुछ अपूर्व आनन्द का अनुभव होने लग गया था, वह उनकी वर्षों की तपस्या का मूर्तमान फल बन कर आ रही थी, इसलिए वह बड़ी उत्सुकता के साथ उस समय की प्रतीक्षा कर रहे थे, जब वह अपनी मूर्तिमयी तपःश्री को प्रत्यक्ष देख सकें।

प्रतीक्षा के दो-दिन वर्षों की भाँति जैसे-तैसे कटे और नियत अवसर पर आदिराज मनु तथा महारानी शतरूपा देवहूति को लेकर यान (विमान) द्वारा कर्दम मुनि के आश्रम में प्रविष्ट हुए। यों तो वह स्वयं

राजा थे, उनके आमोद-प्रमोद के लिए बड़े-बड़े सुन्दर उद्यान बने हुए थे। परन्तु आज कर्दम मुनि के इस उपवन की दिव्यश्री को देखकर उनका हृदय-कमल विकसित हो गया। सरस्वती के पवित्र जल और आश्रम के स्वयं पके फलों में जो आस्वाद था, वह क्रित्रिम राजकीय पकवानों में सर्वथा दुर्लभ था। फिर ब्रह्मचर्य और तपस्या की विकट भट्टी में तपाई हुई कर्दम मुनि की दिव्य-देह कुन्दन की भाँति दमक रही थी। कर्दम मुनि ने अभ्यागत अतिथियों का तपस्वीजन सुलभ यथोचित सत्कार कर, उनके शुभागमन का कारण पूँछा, तो मनुजी बोले कि भगवन् ! मेरी कन्या देवहूति अवस्था को प्राप्त हुई है, मैं उसके विवाह के लिए अनुरूप वर का अन्वेषण कर रहा था, कि महर्षि नारद के द्वारा मुझे आपका परिचय प्राप्त हुआ और यह भी विदित हुआ कि आप विवाह के लिए उद्यत हैं, इसलिए इस कन्या को आपके अनुरूप समझ कर इसे मैं आप की सेवा में लाया हूँ और देवहूति ने तो जिस दिन से नारदजी के मुँह आपके रूप तथा गुणों

की प्रशंसा सुनी है, उसी दिन से अपने को आपके अर्पण कर चुकी है। इसलिए हे भगवन्! आप इसको स्वीकार कीजिए।

कर्दम मुनि तो पहिले से ही उसके लिए तैयार बैठे थे। यह सब प्रश्नोत्तर तो केवल शिष्टाचार के परिपालन के लिए हो रहे थे। मनुजी का वक्तव्य समाप्त होने पर गम्भीरता के साथ बोले। इसमें सन्देह नहीं कि मैं विवाह करने का संकल्प कर चुका हूँ और सौभाग्य से आपकी कन्या भी मुझे सर्वथा अनुरूप ही प्रतीत होती है। भला लक्ष्मी को लजाने वाली आपकी यह कन्या किसके हृदय को आकृष्ट नहीं कर लेगी। मैं तो समझता हूँ कि मुझे अपने तपोबल के कारण ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि मनु की कन्या उत्तानपाद की बहिन और साक्षात् लक्ष्मीरूपिणी देवी देवहूति मेरे द्वितीयाश्रम की सङ्गिनी बनेगी। अतएव मैं बड़ी प्रसन्नना के साथ आपके प्रस्ताव को स्वीकार करता हूँ और नियमानुसार

शपथ तथा संस्कार पूर्वक मैं उनका पाणिग्रहण करता हूँ।

आदिराज मनु विवाह की समस्त सामिग्री सम्बद्ध कर अपने साथ ही लिए आए थे, केवल वर-पक्ष की स्वकृति प्राप्त होते ही उसी तपोवन में विवाह का आयोजन हो गया। घराती और बराती के रूप में इस शुभ-अवसर पर आस-पास के आश्रमवासी मुनिगण भी कर्दम मुनि के आश्रम में एकत्रित हो गए थे। उन सब ऋषियों के सामने अग्नि को साक्षी कर कर्दम मुनि ने प्रतिज्ञा पूर्वक देवहूति का पाणिग्रहण किया और आज से वह गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो गए।

विवाह संस्कार के विधिवत सम्पन्न हो जाने पर आदिराज मनु इस भारी कार्य से निवृत्त हो देवहूति को कर्दम मुनि के श्रीचरणों में सौंप कर राजधानी जाने लगे, तो आश्रम में बड़ा करुण दृश्य उपस्थित हो गया। देवहूति माता-पिता की स्नेहमयी गोद से हटा कर इस एकान्त जंगल में छोड़ी जा रही थी, बाल्य-जीवन के सुख दिवसों की स्मृति, माता की ममता, पिता का प्यार

और साथिनी सहेलियों का प्रेम याद आकर उसे विह्वल कर रहा था। परन्तु जैसे-तैसे उसे समझा बुझा कर आदिराज मनु अपनी राजधानी को विदा हुए।

माता पिता के विदा हो जाने के बाद देवहूति कर्दम मुनि के साथ सुखपूर्वक रहने लगी। विवाह हो जाने के बाद भी कुछ दिन पति-पत्नी दोनों ने उसी प्रकार जीवन व्यतीत करना अच्छा समझा और देवहूति तन-मन से पति-सेवा में प्रवृत्त हो गई। उस नियत समय के समाप्त होने पर एक दिन कर्दम मुनि उससे बोले कि इन दिनों मेरी सेवा में रह कर तुमने सचमुच तुमने बड़ा कठोर तप किया है। मेरे सुख के लिए अपने सुख की चिन्ता छोड़ कर इस कमल सदृश देह को तुम ने अत्यन्त क्लेश दिया है। तुम्हारे इस तप और त्याग ने मेरे हृदय में बड़ा ऊँचा स्थान प्राप्त किया है। अच्छा अब हम अपने जीवन-प्रवाह को बदल कर सुख-पूर्वक अवशिष्ट-काल को व्यतीत करें। ऐसी भगवान् की आज्ञा है। यह कह कर देवहूति

की हार्दिक कामनाओं की पूर्ति के लिए महर्षि ने एक सुन्दर विमान की रचना की और पवित्र "विन्दुसर" में स्नान कर देवहूति को उस पर चढ़ने की आज्ञा दी। महर्षि के योग-बल से देवहूति की सेवा के लिये सैकड़ों अप्सराएँ उपस्थित हो गईं और उन सब को साथ लेकर देवहूति सहित विमान पर आरूढ़ हो गए।

इस विमान पर चढ़ कर देवहूति और कर्दम मुनि ने समस्त पृथ्वी-मण्डल का परिभ्रमण किया और गार्हस्थ्य सुख का उपभोग करते हुए जीवन का बहुत बड़ा भाग आनन्द के साथ बिता दिया। इसी बीच में भगवान् की भविष्य-वाणी के अनुसार देवहूति के गर्भ से नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। अन्त में जब कर्दम मुनि की अवस्था ढलने लगी, तो उन्हें फिर अपने उसी आश्रम की याद आई और उन्होंने विरक्त हो कर एकान्त में रहने का सङ्कल्प किया। देवहूति को जब यह विदित हुआ कि अब इनको रोक कर रखना असम्भव है, तो एक दिन दुःखी होकर उनसे बोली कि भगवन्! आप जाते हैं, तो जाइये; परन्तु इन कन्याओं
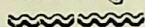
के विवाह का प्रबन्ध तो करते जायँ, और यदि कृपा करें, तो मुझे एक पुत्र तो प्रदान करते जायँ, जिससे आप के और कन्याओं के चले जाने के पीछे मेरा जी बहल सके।

देवहूति की प्रार्थना वस्तुतः उचित थी, इसलिए कर्दम मुनि के हृदय पर उसका अभीष्ट प्रभाव भी उत्पन्न हुआ। अपने एकान्त-सेवन के सङ्कल्प को शिथिल कर, उन्होंने देवहूति को एक पुत्र-प्रदान करने की धारणा को दृढ़ किया और सब कन्याओं के विवाह का प्रबन्ध करने का भी निश्चय किया। पति-पत्नी की प्रबल आकांक्षा के कारण अब की बार देवहूति के गर्भ से एक बालक ने जन्म लिया। इस परिवार में निरन्तर नौ कन्याओं के उत्पन्न होने के बाद इस ढलती अवस्था में यह पहिला पुत्र उत्पन्न हुआ था, इसलिए उसके जन्मोत्सव पर बड़ा आनन्द-मङ्गल मनाया गया। अन्य ऋषियों के साथ स्वयं ब्रह्मा भी इस अवसर पर दम्पति को बधाई देने के लिए कर्दम मुनि के आश्रम में पधारे, और उन्ही सब के परामर्श के अनुसार
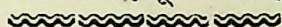
नव-जाति शिशु का "कपिल" नाम रक्खे जाने का निश्चय हुआ। बालक बड़ा होनहार प्रतीत होता था और सामुद्रिक-शास्त्र के विशेषज्ञ विद्वानों के बताए जाने से बालक में अद्भुत तत्वज्ञानी बनने के लक्षण भी पाए।

[कपिल और देवहूति का सम्वाद]

बालक कपिल के जन्म होने के बाद थोड़े ही दिनों में उनकी सब बहिनों के विवाह का प्रबन्ध हो गया और इस प्रकार देवहूति की दोनों इच्छाओं की पूर्ति करके तृतीयावस्था में कर्दम मुनि एकान्त-वन में जाकर आत्म-चिन्तन में निरत हो गए। उनके वन-प्रस्थान के बाद देवहूति कपिल के पालन-पोषण में ही अपना समय बिताने लगीं। घर में इन दोनों के अतिरिक्त और कोई नहीं था। बालक कपिल की अवस्था की वृद्धि जिस गति से हो रही थी, उससे कई गुनी तीव्रता के साथ उसकी बुद्धि का विकास हो रहा था। बहुत छोटी अवस्था में ही उसके मस्तिष्क ने एक नई कल्पना को जन्म दिया और वही कल्पना आगे
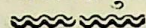
चल कर 'कपिल-दर्शन' अथवा "सांख्य तत्व ज्ञान" के नाम से विख्यात हुई।

आरम्भ में कपिल अपनी माता देवहूति से ही अपने तत्व-ज्ञान की चर्चा किया करते थे। मनुष्य को दुःख क्यों होता है, इसी प्रश्न पर मनन करने के बाद कपिल ने यह स्थिर किया कि वस्तुतः पुरुष को सुख-दुःख कुछ नहीं होता, यह सब उनके मन की कल्पना-मात्र है। स्वयं अपने अज्ञान से प्रेरित होकर वह अपने को सुखी या दुःखी बना डालता है। यों पुरुष तो चेतन-शक्ति है। वह सुख-दुःख सब से परे है, परन्तु अज्ञान के कारण वह प्राकृतिक-पदार्थों के साथ ममत्व जोड़े बैठता है, जो कि सर्वथा उसका काल्पनिक सम्बन्ध है और इसी ममत्व के कारण वह व्यर्थ में सुखी-दुःखी होता है। अपने इसी तत्वज्ञान की चर्चा एक दिन देवहूति के पूछने पर उन्होंने अपनी माता से इस प्रकार की:—

मेरे विचार में तो समस्त सुख तथा दुःख से सदा के लिए छुड़ा देने वाला अध्यात्म-योग का मार्ग

पुरुषों के कल्याण का एकमात्र साधन है और मनुष्य का अपना चित्त ही वस्तुतः उसके बन्धन अथवा मोक्ष का कारण है। जब वही चित्त प्रकृति के गुणों अथवा प्राकृतिक पदार्थों में आसक्त होता है, तो वही पुरुष को दुःख तथा बन्धन में फँसा देता है और इसके विपरीत जब वही चित्त बाहरी विषयों से विमुख होकर आत्मरत हो जाता है। उस समय देखने वाला पुरुष अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, और वही मोक्ष-मार्ग की प्रारम्भिक सीढ़ी है। बाहरी वस्तुओं में अहन्ता-ममता के कारण उत्पन्न हुए काम, क्रोधादि मलों का प्रक्षालन कर जब चित्त-वृत्ति विशुद्ध तथा निर्मल हो जाती है, उस समय पुरुष सुख-दुःख से विनिर्मुक्त हो जाता है और जड़-प्रकृति से परे अपने सदैव प्रकाशमान वास्तविक स्वरूप का अनुभव करता है। ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति के प्रभाव से वह उदासीन चेतन पुरुष तथा निष्प्रभ अचेतन प्रकृति के महद्-अन्तर को भलीभाँति समझ जाता है और उसके साथ ही प्राकृतिक विकारों के प्रति उसकी

अहन्ता-ममता शिथिल होकर उसे मोक्ष पद का अधिकारी बनाती है, अतएव इस तत्वज्ञान के अतिरिक्त मोक्ष का दूसरा मार्ग नहीं है।

परन्तु इस तत्व को भली-भाँति हृदयङ्गम करने के लिए सब तत्वों के लक्षण बताना आवश्यक है; जिन्हें जान कर ही पुरुष प्राकृत गुणों से विमुक्त हो सकता है, इसलिए संक्षेप में उसका भी उल्लेख कर देना चाहिए। इन भौतिक तत्वों में से एक अनादि आत्म-तत्व पुरुष है, जो प्रकृति से भिन्न, निर्गुण, प्रत्यक्धामा और स्वयं प्रकाशस्वरूप है। वह न पैदा होता है और न मरता है, वह सदा एक रस रहने वाला निर्विवाद तथा नित्य है। दूसरा तत्व प्रकृति है, जो त्रिगुणात्मक, नित्य अव्यक्त है, सदसदात्मक, समस्त विश्व का कारण है। यह प्रकृति ही विचित्र गुणों के द्वारा अपने समान रूप गुणादि वाली विविध प्रजाओं की सृष्टि करती है। परन्तु पुरुष अज्ञान के कारण प्रकृति धर्मों को अपने भीतर समझ कर मोह में पड़ जाता है और प्राकृत के कर्तृत्व-भोक्तृत्व को अपना कर्तृत्व-भोक्तृत्व समझने

लगता है। अतएव अकर्ता पुरुष में प्रकृति के योग से ही कर्तृत्व बन्ध और पारतन्त्र्य आदि आ जाते हैं। वस्तुतः कार्य कारण और कर्तृत्व का कारण प्रकृति ही है। परन्तु उसका भोग पुरुष को होता है।

इसके बाद महर्षि कपिल ने सांख्य-प्रक्रिया के अनुसार सृष्टि का विशद विवेचन किया है। इस वर्णन में ग्रन्थकार ने विशुद्ध सांख्य-सिद्धान्त का ही आश्रय न लेकर उसके साथ कुछ मानव-धर्म का भी पुट दे दिया है। सृष्टि-निरूपण के समाप्त होने के बाद देवहूति ने फिर प्रश्न किया कि हे प्रभो! प्रकृति और पुरुष दोनों नित्य हैं और दोनों का अन्योन्य सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। जैसे गन्ध और पृथ्वी अलग-अलग नहीं रह सकती, जैसे रस जल से अलग नहीं रह सकता, उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते, इसलिए प्रकृति पुरुष को कभी नहीं छोड़ सकती है और जिस प्रकृति के गुणों के कारण अकर्ता पुरुष को बन्धन हुआ है, उन गुणों

के विद्यमान रहते पुरुष उनसे विमुक्त कैसे हो सकता है ?

देवहूति के, इस प्रश्न के उत्तर में कपिल बोले कि हे देवि ! निष्काम कर्मों से उत्पन्न हुए, विमल-धर्म, प्रगाढ़ भक्ति, तत्वज्ञान, प्रबल वैराग्य, तपोयुक्त योग और आत्म-समाधि के द्वारा अहर्निश साधना से प्रकृति शनैः शनैः ऐसे ही निवृत्त हो जाती है, जैसे अग्नि को पैदा करने वाली अरणि स्वयं उसी अग्नि में मिलकर भस्म हो जाती है.इसी प्रकार तत्वज्ञान और वैराग्य की अग्नि में दग्ध होकर प्रकृति भी तिरोभूत हो जाती है। फलतः भोग समाप्त हो जाने पर तत्वज्ञान के कारण दृष्ट-दोषा प्रकृति का पुरुष परित्याग कर देता है और उस समय स्व-स्वरूप में स्थित ऐश्वर्ययुक्त पुरुष का परित्यक्त प्रकृति कुछ अनिष्ट नहीं कर सकती है। जैसे सोते हुए पुरुष को स्वप्न के भीषण दृश्य सुख:दुख का, भोग दे सकते हैं, परन्तु निद्रा दूर हो जाने पर जागृत पुरुष पर स्वप्न के दृश्यों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता इसी प्रकार तत्वज्ञानी पुरुष को प्रकृति बन्धन में नहीं

डाल सकती। इसलिए जो साधक दीर्घकाल तक निरन्तर श्रद्धा के साथ अध्यात्म-चिन्तन में रत होकर ब्रह्मलोक पर्यन्त समस्त सुखों से विरक्त हो जाता है। वह, समय आने पर तत्वज्ञान को प्राप्त होता है और अपने उस तत्वज्ञान के द्वारा, वह भक्त प्रकृति-पुरुष के रूप को समझ कर तदाश्रित स्वरूपावस्थान रूप उस कैवल्य-धाम को प्राप्त होता है, जहाँ से फिर जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आता है। यही त्रिविध दुख की आत्यन्तिक निवृति है। यही पुरुष का ध्येय है और यही परम पुरुषार्थ है।

माता देवहूति के भक्ति-योग-सम्बन्धी प्रश्न करने पर श्रीकपिल मुनि बोले—

हे मातः! भक्तियोग अनेक प्रकार का है। और वह विशेष-विशेष मार्गों से प्रकाशित होता है। स्वभाव की वृत्तियों के भेद से पुरुष की भक्तियों का भी विभेद होता है। हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्य, क्रोध वा अहंकार के वश अपनी-अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए जो परमात्मा

की पूजा या भक्ति की जाती है, उसको तामसी भक्ति कहते हैं।

विषय, यश अथवा ऐश्वर्य की कामना करके भेद-दृष्टि पूर्वक सकाम भाव से जो देवार्चन पूजा या भक्ति की जाती है, वह राजसी भक्ति है।

जो व्यक्ति अपना पाप नष्ट करने की इच्छा से अपने सम्पूर्ण कर्मों का अर्पण कर देता है, और सर्वदा यज्ञादि करता है, किन्तु जीव को भेद बुद्धि से देखता है, वह व्यक्ति अपनी आशा पूर्ण करने के लिए जिस आसक्ति से भगवत् पूजा करता है, उसे सात्विकी भक्ति कहते हैं।

जो जन परमेश्वर के गुणों का श्रवण करते ही उसको सबके भीतर वर्तमान जानते हैं, और गंगा का जल जैसे सागर के जल में अभिन्न-भाव से मिलित हो जाता है, वैसे ही जो अपनी कर्मगति को अविच्छिन्न भाव भगवदर्पण करते हैं, उस आसक्ति को निर्गुण वा निष्काम भक्ति योग कहते हैं। इस भाव की भक्ति का करना ही पुरुषोत्तम भगवान् की अहैतुकी भक्ति कहलाती है।

ऐसी अहैतुकी भक्ति ही भक्ति-योग का यथार्थ आदर्श है, ऐसे निष्काम भक्तगण एक मात्र भगवद्भक्ति में ही परम सुख का अनुभव करते हैं और उसके आगे स्वर्ग और अपवर्ग को भी पसन्द नहीं करते ।

वे पाँच प्रकार की मुक्ति को भी सिवाय मेरी सेवा के नहीं ग्रहण करते । इस प्रकार के भक्तियोग को ही आत्यन्तिक भक्ति कहते हैं । इसी भक्ति-योग से तीनों माया के गुणों का अतिक्रमण करके ब्रह्मतत्व की प्राप्ति होती है ।

हे मातः ! भक्त का हृदय साधना से कैसे पवित्र होता है, सो सुनो—वे लोग श्रद्धायुक्त होकर अनिमित्त माया भोग को त्याग कर निष्काम धर्म की सेवा में नियुक्त रहते हैं, एवं भक्त महर्षिगण जिन सब क्रिया-योगों का विधान कर गए हैं उस विधि के अनुसार हिंसा द्वेष आदि से रहित होकर निष्काम कर्म करते हैं । वे भगवद्भक्तों का दर्शन, सेवा और भगवान् की पूजा, स्तुति और भजन करते रहते हैं । धर्म और
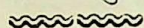
वैराग्य धारण करके सब प्राणियों में आत्म-भावना करते हैं, अपने तुल्य लोगों से मित्रता करते हैं। यम, नियम आदि योगाचार से शरीर को शुद्ध रखते हैं। वे लोग सर्वदा भगवद्भक्तियुक्त कथाओं का श्रवण करते हैं, नाम का कीर्तन करते हैं, एवं अहंकार हीन होकर निष्कपट व विनीत-भाव धारण करके श्रेष्ठ जनों का संग करते हैं। उक्त समस्त भाव धर्म के अङ्ग हैं इनके करने से जब पुरुष का अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, तब वह भगवान् के गुण के श्रवण मात्र से अनायास ही परमपद को प्राप्त हो सकता है, जैसे गन्ध, वायु के योग में अपने स्थान से आकर घ्राणेन्द्रिय के निकट उपस्थित होता है वैसे ही ऐसे भक्तियोग के अधिकारी प्राणी का विकार हीन विशुद्ध चित्त सहज में परमात्मा को प्राप्त होता है।

परमात्मा सब प्राणियों का आत्म-स्वरूप होकर सब प्राणियों में निरन्तर विराजमान है। कोई-कोई व्यक्ति इस अभेद-भाव को स्थिर न करके भेद भाव सहित केवल पूजन आदि ही करते रहते हैं।

कर्दम और देवहूति सम्वाद

जो सब प्राणियों में वर्तमान है, सबका आत्मा व ईश्वर है, जो व्यक्ति मूढ़तावश उसे त्याग कर प्रतिमा की ही पूजा में तत्पर रहता है, उसका वह पूजन केवल राख में होम करने के समान निष्फल है।

इस प्रकार भेद-भाव धारण करके जो कोई दूसरे प्राणी के शरीर में स्थित जो परमात्मा है, उससे हिंसा व द्वेष करता है, वह प्राणियों से द्रोह करने वाला व्यक्ति प्रतिमा आदि की पूजा करके कभी शान्ति सुख को नहीं पाता।

जो प्राणियों का अनादर करने वाला और प्राणियों का बैरी है, वह अनेक प्रकार की सामिग्री और अनेक प्रकार की क्रियाओं से, कल्पित प्रतिमाओं में लाख उसका पूजन करे, पर हे पापहीने ! वह उस पर कदापि संतुष्ट नहीं होता। अतएव उसको सब प्राणियों में स्थित एवं सब प्राणियों का आत्मा जानकर सब प्राणियों में दान, मान, मित्रता और समदृष्टि द्वारा उसका पूजन करना ही सब लोगों का आवश्यक कर्तव्य है।

श्रीकपिल मुनि

देखो, अचेतन-पदार्थ से सचेतन-पदार्थ श्रेष्ठ है, उससे जिनके प्राण-श्वास-का सञ्चार होता है, वे श्रेष्ठ हैं। प्राणधारी की अपेक्षा ज्ञान जिनको है, वे जीव श्रेष्ठ हैं। उनसे स्पर्शेन्द्रिय के ज्ञान वाले वृक्षादि श्रेष्ठ हैं। उनसे रस के ज्ञान वाले मत्स्य आदि श्रेष्ठ हैं। उनसे गन्ध के ज्ञानी भ्रमर आदि श्रेष्ठ हैं। उनसे शब्द के जानने वाले सर्प आदिक श्रेष्ठ हैं। उनसे रूप-भेद के जानने वाले काक आदि श्रेष्ठ हैं। उनसे जिनके मुख में नीचे-ऊपर दोनों जगह दन्त हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उनसे पैर वाले श्रेष्ठ हैं। उनसे चार पैर वाले श्रेष्ठ हैं। उनसे दो पैर वाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं। उन वर्णसंकर मनुष्यों में शुद्धाचार-वर्ण श्रेष्ठ हैं। वेदज्ञ से वेद का अर्थ जानने वाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है। उससे संशय को दूर करने वाला अर्थात् मीमांसक ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। उनसे जो अपने धर्म-कर्म के आचरण में निष्ठ हैं, वह श्रेष्ठ हैं। उनसे भी मुक्तसङ्ग (जिसने सङ्ग त्याग दिया) है, श्रेष्ठ है; क्योंकि वह निष्काम मुक्तसङ्ग व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कर्म और कर्मों के फल एवं शरीर को

भगवदर्पण कर देता है। वह अपने आत्मा तथा कर्मफलों का संन्यास सर्वथा परित्याग करके पूर्ण संन्यास ग्रहण करता है। वह सर्वत्र समदर्शी एवं कर्तृत्व के अभि-से शून्य हो जाता है।

"ईश्वर अन्तर्यामी आत्मारूप से सब प्राणियों में स्थित है" यह भावना मन में करके उन प्राणियों को ईश्वर तुल्य मानकर आदर सहित प्रणाम करना उचित है।

सर्व नियन्ता परमात्मा परब्रह्म भगवान् प्रधान पुरुष-स्वरूप एवं प्रधान-पुरुष से अलग है। जिस दैव से अनेक संसार रूप कर्म की विविध चेष्टाएँ होती हैं, यह वही देव है, भगवान् के इस रूप को ही सब वस्तुओं के रूप परिवर्तन का स्थान और आश्रय एवं अद्भुत काल कहते हैं। इस काल से ही मह-त्तत्त्व आदि के अभिमानी एवं भिन्न दर्शी जीवों को भय उत्पन्न होता है। सर्वाश्रय यह काल सबके भीतर प्रवेश कर उनके भौतिक देह का, महाभूत-समूह
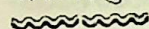
द्वारा संहार करता है। यह काल ही ईश्वर का नामान्तर एवं यज्ञ फल का दाता है। जो लोग सबको वश करते हैं, उनको भी वश करने वाला है। इसको कोई प्रिय नहीं है और न कोई अप्रिय है एवं न कोई इसका बान्धव है। यह स्वयं सावधान होकर असावधान प्राणियों का संहार करता है। काल के ही भय से वायु चलता है, सूर्य तपता है, इन्द्र वर्षा करता है और तारे चमकते हैं। काल के ही भय से वृक्ष, लता, औषधि आदि यथा समय फलते-फूलते हैं। काल के ही भय से नदियाँ बहती हैं और समुद्र अपनी सीमा को नहीं छोड़ता। अग्नि भी काल के ही भय से प्रज्वलित होता है, एवं पृथ्वी पर्वतों के सहित जल पर रह कर भी नहीं डूबती। इसी काल की आज्ञा से आकाश जीवित प्राणियों को श्वास-प्रश्वास लेने का अवकाश देता है एवं यह महत्तत्वादि सात पदार्थों से आवृत होकर अहङ्कार तत्वात्मक अपने शरीर को लोक रूप से विस्तृत करता है। काल के ही भय से सत्वादि गुण के अभिमानी ब्रह्मादि देवगण चराचर

जगत् के नियन्ता होकर भी इस विश्व की सृष्टि आदि अपने-अपने कार्यों में बारम्बार प्रवर्तमान होते हैं। वही काल पिता आदि द्वारा पुत्रादिकों को उत्पन्न करता है और मृत्यु के द्वारा सर्व संहारक यम को भी नष्ट करता है। यह सबको उत्पन्न और नष्ट करने वाला है; किन्तु स्वयं अनादि अनन्त और अव्यय है।

प्रायः मेघमण्डल वायु द्वारा विचलित होता सही है, किन्तु यह वायु के वेग को नहीं जानता; वैसे ही यह सब लोग माया में मोहित होकर काल द्वारा जन्म-मृत्यु को प्राप्त होते हैं, किन्तु उस काल के दुरतिक्रम विक्रम को जानने में नहीं समर्थ होते।

यह प्रमत्त पुरुष सुख के लिए बड़े कष्ट से जिस-जिस अर्थ का साधन करता है, भगवान् उसको नष्ट कर देते हैं, जिसके लिये मनुष्य शोच करता है। यह दुर्मति जीव मोहवश अपने अनित्य शरीर को तत्सम्बन्धी स्त्री, पुत्र, धन, रत्न, गृह और संज्ञादि सहित नित्य मानता है।

यह जीव ऐसा ईश्वर की माया से मोहित है कि कर्मवश नारकी योनि को पाकर भी उसमें नारकी आहारादि द्वारा सुख का अनुभव करके उसको भी छोड़ने की इच्छा नहीं करता।

यह मूर्ख जीव स्त्री, कन्या, पुत्र, गेह, देह, पशु, बन्धु और धन आदि को अपना मानकर उसमें अत्यन्त आसक्त रहता है और उक्त विषयों के पाने से अपने को कृतार्थ वा भाग्यशाली मानता है। कुटुम्ब के भरण-पोषण की चिन्ता रूप अग्नि इसके अङ्गों को सदा जलाया करता है; विशेष करके यह मन्द-गति प्रायः इन स्त्री-पुत्रादि के लिए ही दुष्ट आच-रण करता है। असती कुलटा स्त्रियों की माया और हावभाव एवं एकान्त रचित संभोग आदि में और छोटे लड़की-लड़कों के तोतले वचनों में इसका मन और इन्द्रियाँ इस प्रकार आसक्त हो जाती हैं कि यह उनके आगे कालरूप ईश्वर भी भूल जाता है।
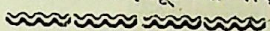
इस प्रकार जन्म भर कुटुम्ब के पोषण में बिताने वाला वह मृत प्राय अजितेन्द्रिय व्यक्ति, रोते हुए स्वजनों के आर्तनाद से बड़ी व्यथा को प्राप्त होता है। अन्त में ज्ञान शून्य होकर प्राण त्याग करता है।

श्रीकपिल मुनि ने श्रीमाता देवहूति से अधर्मियों की तामसी गति का वर्णन करके, मनुष्य-योनि-प्राप्ति-रूप राजसी गति का वर्णन किया। इसके पश्चात् सात्विक धर्म करने से सात्विकी ऊर्ध्वगति व अज्ञान से पुनरागमन का वर्णन किया है, अन्त में ज्ञान-लोभ व मुक्ति-पद की प्राप्ति बता कर माता देवहूति के सारे प्रश्नों का समाधान कर दिया है।

श्रीकपिल मुनि के उपदेश को सुन कर माता देवहूति का अज्ञान दूर हो गया और उसने भी इस मार्ग का अवलम्बन कर आत्म-साक्षात्कार करने की साधना में ही अपने शेष-जीवन को लगा देने का निश्चय किया। इधर कपिल मुनि भी माता की

आज्ञा लेकर विदा हो गये और देवहूति उसी आश्रम में रह कर निरन्तर आत्म-चिन्तन में रत हो गईं और अपनी साधना के द्वारा उन्होंने शीघ्र ही परमपद को प्राप्त किया। यही भगवान् कपिल और देवहूति का सम्वाद है, यह इतना पवित्र है कि जो इसे श्रद्धा से सुन कर उस पर आचरण कर आत्म-साक्षात्कार करने की साधना करता है, वह परम पुरुषार्थ को प्राप्त होता है।

श्रीकपिल चरित्र का यह उपाख्यान श्रीमद्‌भागवत के आधार पर लिखा गया है। श्रीमद्भागवत में तृतीय स्कन्ध २१ वें से ३३ वें अध्याय तक अन्तिम १३ अध्यायों में श्रीकपिलमुनि-देवहूति सम्वाद के रूप में उनके दार्शनिक विचारों का विशद विवेचन किया गया है, कपिल के सम्बन्ध में इतना विस्तृत विवरण अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है। इस वर्णन में श्रीभागवतकार ने कपिल के दार्शनिक विचारों का जो उल्लेख किया है, वह विचार यद्यपि बहुत अधिक अंश में वर्तमान सांख्य से मिलते-जुलते हैं, परन्तु फिर भी उसमें